व्यंग्य

– हरिशंकर परसाई

मिल लेना

'मिल लेना' उतना आसान नहीं है, जितना मैं पहले समझता था। देखता था कि लोग़ राजधानी जाने वाले से कहते थे–हमारा अमुक काम अटका है, ज़रा फँला से मिल लेना। वे मिल लेते थे और लौट कर बताते थे कि मिल लिए और काम हो जाएगा। मेरे एक मित्र हैं जो 'मिल लेने' के विशेषज्ञ हैं। वे सुबह टैक्सी ले कर निकले और शाम को जब अपना हिसाब बताया तो मैं चकित रह गया–वे तीन मंत्रियों, चार सचिवों और तीन डाइरेक्टरों से मिल आये थे और लगभग पंद्रह आदमियों का काम करवा आये थे। हमारी इस सारी व्यवस्था को मिल लेने वाले ही चला रहे हैं। बड़ी कंपनियां हज़ारों रुपये वेतन पर राजधानियों में मिल लेने वाली रखती हैं, जिनका काम सिर्फ़ मिल लेना है। मगर मैंने सुना है कि असली सरकार यही मिल लेने वाले चलाते हैं, यही बजट बनवाते हैं, यही मंत्रिमंडल बनवाते हैं, यही नीतियां तय करते हैं। युद्ध और शांति भी, सुना है इन्हीं मिल लेने वालों के इशारे पर होती है।

पहले मैं मिल लेने को साधारण बात समझता था, पर एक अनुभव के बाद मानने लगा हूं कि इस काम के लिए विशिष्ट साहस, विशिष्ट प्रतिभा और विशिष्ट चतुरता चाहिए। सबसे यह नहीं बनता। मुझसे यह नहीं बना, थोड़ा बना तो भी तो बहुत भद्दे ढंग से बना।

एक आदमी ने मुझसे एक दिन कहा–आप राजधानी जा रहे हैं। मेरा एक छोटा-सा काम है। विभाग के प्रधान से ज़रा मिल लीजिए। वे आपको बहुत चाहते हैं। मैंने आपका हवाला दिया था, वे कहने लगे कि वे तो मिलते ही नहीं, अपना काम कर के लौट जाते हैं। आप दो शब्द कह देंगे तो मेरा काम हो जायेगा। मैं राजी हो गया। राजधानी पहुंच कर जब मैं उनसे मिलने चला, तो मेरे भीतर न जाने क्या होने लगा। जाऊं कि न जाऊं?

वे क्या सोचेंगे? सोचेंगे–लो काम कराने आ गया। फ़ायदा उठाने आ पहुंचा। कहूंगा कैसे?

न कह सका तो क्या होगा? मैं बैठ गया। दूसरी तरफ़ से सोचने की कोशिश की–मेरा काम तो है नहीं। दूसरे के भले की बात है। दूसरे के लिए मांगने में क्या शरम और क्या झिझक। गांधी जी कितना मांगते थे, पर दूसरों के लिए मांगते थे। इसलिए बेखटके मांगते थे। चलो।

मैं चल दिया। रास्ते में फ़िर कमज़ोरी आई और फ़िर मैंने उसे दबाया। आखिर दफ़्तर के क़रीब सौ गज़ की दूरी पर मेरे मन में फ़िर दुविधा हुई। एक पेड़ की छाँह में खड़े होकर मैं अपने मन को तरह-तरह से तैयार करता रहा। आख़िर यह तय करके कि अगले चक्कर में मिल लूंगा।

काम वाले ने पूछा–आप उनसे मिल लिए होंगे?

मैंने कहा– मैं गया था, पर मालूम हुआ कि वे दिल्ली गये हैं। अगली बार मिल लूंगा।

अगली बार मैं हिम्मत करके दफ़्तर के पास पहुंचा और इस बार बाईं तरफ़ सौ गज़ की दूरी पर पेड़ की छाया में खड़ा-खड़ा सोचता रहा–वे मन में क्या सोचेंगे? कहेंगे, यों तो यह नहीं मिलता। अब मिलने आया है, तो काम लेकर आया है।

मैं फ़िर लौट आया और कह दिया कि वे बंगलौर एक मीटिंग में गये हैं। सरकारी मीटिंगों की चार-पांच निश्चित स्थान हैं। साल भर सरकारी मीटिंगें इस इंतज़ार में रुकी रहती हैं कि कि कब गरमी आये और हम सरकारी खर्च पर श्रीनगर या मसूरी या बंगलौर में हों। तीसरी बार मैंने फ़िर मिलने की कोशिश की, पर लौट कर कह दिया कि वे एक मीटिंग में मसूरी गये हैं।

उसे शक हो गया कि जब तक मैं इनके साथ राजधानी नहीं जाऊंगा, तब तक साहब मीटिंग में बाहर ही रहा करेंगे। उन्हें दफ़्तर में वापस लाने के उद्देश्य से अगली बार वह मेरे साथ हो लिया। मुझे घबराहट होने लगी। इस बार मैं तभी बच सकता हूं जब वे सचमुच बाहर गये हों। घर पहुंचने के दो-तीन घंटों के भीतर ही काम वाला पता लगा लाया कि वे यहीं हैं और कुछ दिन रहेंगे।

पहले दिन मैंने कहा–आज अपना काम निपटा लूं। दूसरे दिन सुबह उसने कहा–चलिये, वे बंगले पर खाली मिल जायेंगे। मैंनें कहा–दफ़्तर में मिलना ठीक होगा। वे तुरंत फ़ाइल वग़ैरह बुला कर ऑर्डर कर देंगे।

उसे बात पट गई। मेरे कुछ घंटे कटे, पर बीच-बीच में चिंता काट जाती थी। एक बजे भोजन करा कर उसने कहा – चलिये दफ़्तर। मैंने कहा–मैं सोचता हूं, घर पर मिलना ही ठीक रहेगा। बात यह है कि उनसे व्यक्तिगत संबंध ही हैं। इसलिए दफ़्तर में मिलना ठीक नहीं। खुल कर बात भी नहीं हो सकेगी। वह मान गया। बोला–ठीक है। शाम के लगभग आठ बजे वे ख़ाली रहते हैं। मैं आपको ले चलूंगा।

शाम तक मैं यहां-वहां घूमता रहा, दोस्तों में बैठता रहा, पर खटका बराबर बना रहा कि शाम को उनसे मिलना है। अब किसी तरह टल नहीं सकता। आठ बजे उन्होंने मुझे टैक्सी में बिठाया। तय हुआ कि बंगले के सामने से निकलेंगे और सौ गज़ आगे जा कर मैं टैक्सी से उतर जाऊंगा। वह टैक्सी में मेरा इंतज़ार करेगा। टैक्सी जब बंगले के सामने से निकली तो बरामदे में दो आदमी खड़े दिखे। आगे जाकर टैक्सी रुकी, तो मैंने कहा – अभी तो दो आदमी वहां मिलने को खड़े हैं। इस वक़्त जाना ठीक नहीं होगा। उसने कहा–वे बात करके जाने के लिए खड़े हैं। अब तक चले गये होंगे। मैंने कहा–नहीं, उनके खड़े होने के ढंग से ऐसा मालूम होता है कि मिलने के लिए आये हैं। उसने कहा–तो फ़िर ऐसा करें, यहां पास ही मुझे एक आदमी से मिलना है। उससे दो मिनट में मिल कर लौटते हैं। तब तक वे लोग़ चले गये होंगे।

मुझे कुछ राहत मिली। जिससे उसे मिलना था, उसके घर के सामने टैक्सी रोक कर वह उतरा। कहा–आप बैठिये। मैं दो मिनट में आता हूं। थोड़ी देर बाद एक सज्जन आये और बोले–वाह साहब, ऐसा हो नहीं सकता कि घर पर आयें और टैक्सी में ही बैठे रहें। दो मिनट तो बैठना ही पड़ेगा। काम वाले ने बहुत ज़ोर दिया कि इस वक़्त बहुत ज़रूरी काम है, मैं इन्हें कल ले आऊंगा। पर उन सज्जन ने मुझे उतार लिया और मैं उतर गया।

बैठक में पहुंच कर सज्जन बोले–चाय तो पीनी ही पड़ेगी। मैंने कहा–हां, चल जायेगी। काम वाला घबरा उठा। बोला–देखिये, चाय में देर लगेगी। एक जगह ज़रूरी जाना है। सज्जन ने कहा–बस, दो मिनट लगेंगे।

मैं सोच रहा था, अगर यह पंद्रह-बीस मिनट लगा दे, तो मैं इस वक़्त मिलने से बच सकता हूं। पता नहीं, इसकी पत्नी कैसे चाय बनाती है–सिगड़ी पर या स्टोव पर। अगर बरशेन हुआ, तो बहुत जल्दी चाय बन जायेगी। हे भगवान, इसके घर बरशेन न हो। और अगर तूने इसे पहले से बरशेन दे रखी हो तो इस वक़्त गैस ख़त्म हो गई हो। चाय पीने और पान खाने में नौ बज गये। मेरा मन कुछ हलका हुआ। काम वाला मुझे लेकर चला। कहने लगा–ये आदमी अच्छे हैं, पर दूसरों के समय का महत्त्व नहीं समझते। मैंने कहा–हां, देखिये न, व्यर्थ आधा घंटा बरबाद कर दिया। हम लोगों से नहीं करते बनता नहीं है। बंगले के सामने से गाड़ी बढ़ा कर जब उसने रोकी, तो मैंने कहा–अब नौ से ऊपर हो चुका। वे खाना खाकर सोने की तैयारी में होंगे। ऐसे वक़्त जाना ठीक नहीं। दिन-भर का थका आदमी इस वक़्त आराम चाहता है। उनका 'मूड' ठीक नहीं हुआ, तो होता काम बिगड़ जायेगा।

उसने कहा–कोई बहुत देर नहीं हुई है। मेरा तो ख़याल है कि इस वक़्त वे अकेले मिल जायेंगे।

मैंने कहा–नहीं, इस वक़्त दिन-भर की झंझटों का बोझ उनके मन पर होगा। सुबह आदमी का मन अच्छा रहता है।

उसे अच्छा नहीं लगा। अनमने ढंग से उसने कहा – ठीक है। जैसा आप उचित समझें।

हम लौट पड़े। रास्ते भर उसने कोई बात नहीं की। खाते वक़्त भी वह अनमना रहा। उसे बुरा लग गया था। कुछ भी हो, सुबह मुझे उनसे मिलना ही पड़ेगा।

आठ बजे सुबह मैं उनके फाटक पर पहुंच गया। सौ गज़ पीछे वह टैक्सी में बैठा मुझे देख रहा था। बचाव की कोई सूरत नहीं थी। एक ही रास्ता था। अगर इनके यहां कुत्ता हो और वह भौंक कर झपटे, तो मैं इस बहाने लौट सकता हूं। कह दूंगा–अब मैं उस बंगले में कदम नहीं रखूंगा।

दफ़्तर में ही मिल लूंगा। फाटक में घुसा, तो कुत्ता दिखा। फाटक को भागने के सुभीते के लिए खुला छोड़ मैं आगे इस उम्मीद से बढ़ा कि कुत्ता उठ कर भौंकता ही है। पर वह निकम्मा निकला। एक बार सिर उठा कर उसने देखा और फ़िर अपने ही चरणों में अपना सिर रख कर सो गया।

मैंनें मन को कड़ा किया–अपने लिए तो कुछ मांगने नहीं आया हूं। गांधी जी भी तो दूसरों के लिए मांगते थे।

मैं बैठक में था। वे मेरे सामने बैठे थे। सिगरेट पी, पान खाया। अच्छी बातें हो रही थीं। वे मन से बात कर रहे थे, मैं बेमन से। मैं मन में तय कर रहा था कि काम की बात कैसे और किस मौके पर कह दूं। इसी समय चपरासी फ़ाइल ले कर आया–उसमें 'इमीडियेट' और 'अर्जेंट' की पर्चियां लगी थीं। थोड़ी देर बाद उनका सेक्रेटरी आया। उसके पास भी फाइल थी। उसमें भी 'इमीडियेट' और 'अर्जेंट' की पर्चियां लगी थीं। दोनों फ़ाइलें टेबिल पर रखी थीं। वे कभी उन पर्चियों की तरफ़ देख लेते। मैं भी नज़र डाल लेता। दोनों की नज़रें मिलतीं, तो मैं समझ जाता कि पर्चियों का असर उन पर पड़ रहा है। वे बेमन सें बातें करने लगे। यों इन पर्चियों का मतलब मैं जानता हूं–'इमीडियेट' का अर्थ है साल-भर, 'अर्जेंट' का पांच साल। जिस कागज़ पर कोई पर्ची न हो, उस मामले को बिना निबटाये आदमी रिटायर हो सकता है। वे भले आदमी हैं और भले आदमी पर ही ये पर्चियां असर करती हैं।

अब हम दोनों विचलित थे। वे फ़ाइलों में चले गये थे और मेरे मन में वह काम उलझा था। वे सोच रहे थे कि किस ख़ूबसूरती से वे मुझे विदा कर दें और मैं सोच रहा था कि किस ख़ूबसूरती से मैं उठ जाऊं। पहले आना मुश्किल हो रहा था और अब उठना। काम मेरे दिमाग़ से निकल गया था। काम की बात मैं हर्गिज नहीं करूंगा। गांधी जी का उदाहरण भी बेअसर हो चुका था। अब मेरी समस्या उठना रह गई थी।

वे बोले–अमुक आदमी का काम हो जायेगा, पर दो-तीन महीने लगेंगे।

हे भगवान, दया के सागर। ये तो अंतर्यामी हैं। समझ गये कि काम से आया हूं। जानते हैं, बिना काम यहां कोई मिलने नहीं आता।

मेरी हालत खराब थी। मैंने कहा–मैं उस संबंध में नहीं आया। यूं ही मिलने आया था।

वे बोले–बहुत अच्छा किया आपने। उस आदमी ने आपका हवाला दिया था, इसलिए मैंने कहा।

मेरा पूरी तरह पर्दाफाश हो चुका था, मुझसे बात करते नहीं बन रहा था। वे फ़िर उन पर्चियों की तरफ़ देखने लगे थे। मैं बहुत भद्दे ढंग से उठा और फाटक से बाहर हो गया।

पसीना पोंछा। रुमाल से हवा की और टैक्सी में बैठ गया।

एक बार मिलने में यह हाल हो गया। वे कितने बहादुर होते हैं जो रोज़ किसी से मिलते रहते हैं।

सूरजकुंड मेला : जन संसाधनों पर सरकारी अय्याशी

फ़रीदाबाद (म.मो.) स्कूलों, हस्पतालों व अन्य जन कल्याणकारी कामों के लिए सरकार के पास बेशक धन की कमी बनी रहे, परंतु सूरजकुंड जैसे मेलों ठेलों के लिए सरकार के पास कभी धन की कमी नहीं रहती। सरकार चाहे कांग्रेसियों की हो या फ़िर चौटालों की जनसंसाधनों के दुरूपयोग में कोई पीछे रहने को तैयार नहीं। पुलिस थाने चौकियों में कर्मचारियों का नितांत अभाव इस मेले में कहीं आड़े नहीं आता। पुलिसकर्मियों की कमी के चलते बेशक अपराध चाहे जितने बढ़ जाएं लेकिन मेले में हज़ारों की संख्या में पुलिस तैनात करने में सरकार को कोई हिचक नहीं।

जहां आम आदमी महंगाई व बेरोजगारी जैसी मूल समस्याओं से जूझ रहा है तो शासक वर्ग को मेले जैसी अय्याशियां सूझ रही हैं। मेला देखने वालों में अधिकांश लोग उच्च संपन्न वर्ग तथा अफ़सरशाही से होते हैं। इनके पास न तो धन की कमी होती है और न समय की। आम आदमी जिसे दो वक्त की रोटी जुटाने से ही फुर्सत नहीं है वह मेले जैसी अय्याशी के बारे में सोच भी नहीं सकता। उधर सरकार की मूर्खता देखिए कि आम आदमी की सवारी बसें भी उससे छीन कर मेले के रूटों पर लगा दीं। इन बसों में केवल स्कूलों और कॉलेजों से कक्षाएं छोड़कर भागने वाले कुछ बच्चे भले ही सफर करते हों, बाकी तो खाली ही चलती हैं। इसके चलते इन सरकारी बसों का मुनाफ़ा तो गया ऐसी तैसी में, डीज़ल के पैसे भी पूरे नहीं हो पाते। सरकार ने ये बसें शायद यह सोच कर इन रूटों पर लगाई होंगी कि सभी लोग अपने-अपने कामों पर कहीं और जाने की अपेक्षा मेला देखने ही जाएंगे। लेकिन हर बार की तरह अधिकांश दर्शक कारों से ही आ रहे हैं।

स्थानीय बीके अस्पताल में भटकते, मरीज़ों को देखने के लिए डॉक्टरों व अन्य स्टाफ़ की जहां पहले से कमी चल रही है, उनकी चिंता किए बगैर डॉक्टरों व नर्सों की एक टीम सिर्फ़ इसलिए मेले में बैठा रखी हे कि कहीं किसी वीआईपी को जुकाम हो गया तो उसकी तुरंत देखभाल की जा सके। इसी तरह अग्निशमन दस्ता भी शहर की सुरक्षा को छोड़कर वहां बैठा रखा है। इसके अलावा जिस दफ़्तर में जाओ पता चलता है कि साहब तो मेले में गए हैं। उद्घाटन दिवस पर तो कमाल ही था। ज़िले का कोई अफ़सर छोटे से बड़ा, तहसीलदार से लेकर डीसी तक थानेदार से लेकर एसपी व आईजी तक सब मेले में पहुंचे हुए थे। उपराष्ट्रपति, गर्वनर, मुख्यमंत्री जिन्हें मेला देखने के सिवा और कोई काम नहीं है, उन्हें मेला देखने दो, लेकिन ज़िले भर की शेष सरकारी मशीनरी को तंग मत करो, उन्हें तो दफ़्तरों में काम निपटाने दो। यदि ऐसा हो जाए तो फ़िर शान ओ शौकत क्या हुई? शासक लोग मेला देखने आएं और प्रशासनिक मशीनरी दफ्तरों में काम निपटाए! यह कैसे हो सकता है? यदि जनसाधारण की तरह ही मेला देखाना है तो फ़िर उनके शासक होने का लाभ ही क्या हुआ?

श्रद्धांजलि

भुवनेश ढींगड़ा : एक लोकप्रिय व्यक्तित्व

फरीदाबाद ने अपने एक योग्य पुत्र को असमय ही खो दिया। युवावस्था से ही राजनीति में कदम रख कर जल्दी ही नगर की राजनीति की प्रथम पांत में खड़े भुवनेश ढींगड़ा का कोटपुतली (राजस्थान) के पास एक कार दुर्घटना में 14 फरवरी की सुबह निधन हो गया। सौम्य और मृदुभाषी भुवनेश अपने दोस्तों में काफ़ी लोकप्रिय तो थे ही, अपने व्यवहार से अपने विरोधियों के दिलों में भी एक नरम कोना रखते थे। सभी के दुख-सुख में शामिल होने का वे विशेष ध्यान रखते थे। औपचारिकता पूरी करने के लिए वे मिजाज़पुर्सी नहीं करते थे, अपितु पूरी तरह से परिवार के साथ दुख-सुख में खड़े होते थे।

फरीदाबाद नगर निगम की प्रथम परिषद् के सदस्य रह कर उन्होंने अपनी छवि को बेदाग रखा। पूर्व मुख्यमंत्री चौधरी भजनलाल के परिवार से उनकी निकटता जग ज़ाहिर थी, इसलिए वे सदा कांग्रेस की टिकट के प्रबल दावेदार रहे और इसी कारण वे अन्य नेताओं की आंखों में खटकते भी रहे। परंतु जब चौधरी भजनलाल ने अपनी अलग पार्टी बनाई तो भुवनेश ने अपनी आस्था कांग्रेस में बनाये रखी और काफ़ी दबाव के बावजूद कांग्रेस छोड़ने से इनकार कर दिया।

14 फरवरी की प्रातः से जब लोगों को इस दुर्घटना का पता चला, लोगों का भारी तांता उनके निवास स्थान पर लगना शुरू हो गया जिससे उनकी लोकप्रियता का अंदाज़ा लगता है।

आज भीगी हैं पलकें उनकी याद में,
आंसू भी सिमट गये अपने आप में,
ओस की बूंदें बिखरी हैं इस कदर ज़मीन पर,
मानो चांदनी भी रोयी हो उसकी याद में।
भुवनेश ढींगरा
जन्म तिथि : 10 दिसंबर, 1965
पिता : श्री जगन्नाथ ढींगड़ा, माता : श्रीमती द्रौपदी देवी